**ओ३म्**

**‘सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करणों के प्रकाशन**

**में ऋषि दयानन्द के विश्वसनीय सहयोगी मुन्शी समर्थदान’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 मुन्शी समर्थदान ऋषि दयानन्द जी के ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य में एकमात्र सहयोगी थे जिनके प्रबन्ध-कर्तृत्व में ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थ छपे थे। मुन्शी समर्थदान जी पर सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अपने ग्रन्थ **‘ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास’** में **‘महषि दयानन्द के एकमात्र सहयोगी’** शीर्षक के अन्तर्गत कुछ अपने अनुभवों पर आधारित विचार प्रस्तुत किये हैं। मीमांसक जी ने जो कहा है वह ऐतिहासिक सत्य व तथ्य है, अतः उनके विचारों को पाठकों के ज्ञानार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं ‘ऋषि दयानन्द को अपने लेखन और मुद्रण-कार्य में जितने लेखकों (लिपिकरों) वा मुद्रकों से पाला पड़ा, वे सब प्रायः दुर्जन थे। पं. भीमसेन, ज्वालादत्त, दिनेशराम, बख्तावरसिंह प्रभृति के चरित ऋषि के पत्रों से स्पष्ट हैं। ऋषि को अन्तिम दिनों में मुन्शी समर्थदान ही एक ऐसा सज्जन व्यक्ति मिला, जो मनसा वाचा कर्मणा सर्वथा विशुद्ध और ऋषि दयानन्द का भक्त था। यह विशेष सौभाग्य का विषय है कि ऋषि के महत्वपूर्ण पुनः संशोधित सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कारविधि ग्रन्थ मुंशी समर्थदान की देख-रेख में छपे, जिससे पं. भीमसेन और ज्वालादत्त आदि कुछ भी कुटिलता न कर सके। अन्यथा ये पुनः संशोधित सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि ग्रन्थ भी उस रूप में न छपते, जैसे आज छपे हुए उपलब्ध हैं। ये धूर्त लोग कहां पर क्या मिला देते, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः ऋषि के जो ग्रन्थ या ग्रन्थांश मुन्शी समर्थदान के प्रबन्धकर्तृत्व में छपे, वे मुद्रण वा लिपिकर की भूलों को छोड़कर प्रायः प्रामाणिक हैं।’ पाद टिप्पणी में मीमांसक जी ने मुन्शी समर्थदान जी के विषय में बताया है कि मुन्शी समर्थदान सेठों का रामगढ़ सीकर (भूतपूर्व जयपुर राज्य) के पं. कालूराम शर्मा के भक्त थे। उन्हीं की कृपा से मुन्शी समर्थदान ऋषि दयानन्द को प्राप्त हुए थे।

मुन्शी समर्थदान जी के विषय में डा. भवानीलाल भारतीय जी की पुस्तक **‘आर्य लेखक कोष’** में भी परिचय व विवरण दिया गया है। उन्होंने लिखा है कि ‘स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक यंत्रालय के सुयोग्य प्रबन्धक तथा उनके परम विश्वासभाजन मुन्शी समर्थदान का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावटी प्रान्त के नेठवा ग्राम में सन् 1857 में हुआ। इनके पिता का नाम श्री मंगलदान था, जो दधिवाड़िया गोत्र के चारण थे। यद्यपि आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी, किन्तु स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने के कारण आपने हिन्दी तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब स्वामी दयानन्द का वेद भाष्य बम्बई के निर्णय सागर प्रेस में मुदित होने लगा तो स्वामी जी ने इस कार्य की देख रेख के लिये मुन्शी जी को बम्बई भेजा। कालान्तर में स्वामी दयानन्द ने स्वग्रन्थों के मुद्रण की सुविधा की दृष्टि से 12 फरवरी 1880 को काशी में वैदिक यंत्रालय की स्थापना की। 2 जुलाई 1882 को मुन्शी समर्थदान को इस प्रेस का प्रबन्धक नियुक्त किया गया। वे लगभग 4 वर्ष तक इस पद पर रहे। उनके कार्यकाल में ही स्वामी दयानन्द की प्रसिद्ध कृति **‘‘सत्यार्थप्रकाश”** का द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ। 1886 में वैदिक यंत्रालय की सेवा से मुक्त होने के पश्चात् मुन्शी जी अजमेर में रहने लगे। उन्होंने यहां से 1889 में **‘राजस्थान समाचार’** नामक साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ किया। यह पत्र 1907 तक निकलता रहा। 17 जून 1914 को मुन्शी समर्थदान का निधन हो गया। मुन्शी समर्थदान जी के लेखन कार्य का परिचय देते हुए डा. भारतीय जी ने लिखा है कि **‘आर्यसमाज परिचय’** (1944 वि.) एवं **‘स्वधर्म-रक्षा’** (ईसाई प्रचार से सावधान कराने वाली उपयोगी पुस्तिका) (1944 वि. अर्थात् सन् 1887 ई.) मुन्शी समर्थदान जी प्रकाशित रचनायें हैं। उन्हीं के अनुसार मुन्शी समर्थदान जी की अनेक अप्रकाशित रचनायें परोपकारिणी सभा अजमेर के ग्रन्थ संग्रह में विद्यमान हैं। उनकी एक अन्य रचना **‘अक्षर दीपिका’** का भी उल्लेख मिलता है। मुंशी समर्थदान जी का वर्णन डा. भारतीय जी ने अपनी पुस्तक **‘ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी’** में भी किया है। वहीं से प्राप्त चित्र इस लेख में प्रस्तुत कर रहें हैं जो हमें सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान श्री भावेश मेरजा जी ने उपलब्ध कराया है।

स्वामी दयानन्द जी की मृत्यु के समय सत्यार्थप्रकाश का मुद्रण कार्य प्रगति पर था। सितम्बर, 1884 में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द द्वारा दी गई भूमिका से पूर्व मुन्शी समर्थदान जी के **‘निवेदन’** शीर्षक से महत्वपूर्ण विचार प्रकाशित हुए हैं। इसे भी पाठकों के ध्यानार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। मुन्शी समर्थदान जी ने लिखा है कि ‘परमपूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने यह **‘सत्यार्थप्रकाश’** ग्रन्थ द्वितीय बार शुद्ध करके छपवाया है। प्रथमवृति में अन्त के कई प्रकरण कई कारणों से नहीं छपे थे, सो भी इस में संयुक्त कर दिये हैं। इस ग्रन्थ में आदि से अन्त पर्यन्त मनुष्यों को वेदादिशास्त्रानुकूल श्रेष्ठ बातों के ग्रहण और अश्रेष्ठ बातों के छोड़ने को उपदेश लिखा गया है।

मतमतान्तरों के विषय में जो लिखा गया है वह प्रीतिपूर्वक सत्य के प्रकाश होने और संसार के सुधरने के अभिप्राय से लिखा गया है किन्तु निन्दा की दृष्टि से नहीं। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही है कि अविद्याजन्य नाना मतों के फैलने से संसार में जो द्वेष बढ़ गया है इस से एक मतावलम्बी दूसरे मतानुयायी को द्वेष दृष्टि से देखता है वह दूर हो के संसार में प्रेम और शान्ति स्थिर हो। जिस प्रेम और प्रीति से श्री स्वामी जी महाराज ने यह ग्रन्थ बनाया है उसी प्रीति से पाठकों को देखना चाहिए। पाठकों को उचित है कि आदि से अन्त तक इस ग्रन्थ को पढ़ कर प्रीतिपूर्वक विचार करें। क्योंकि जो मनुष्य इस के एक खण्ड को देखेगा उस को इस ग्रन्थ का पूरा-पूरा अभिप्राय न खुलेगा।

आशा है कि जिस अभिप्राय से यह ग्रन्थ बनाया गया है उस अभिप्राय पर पाठकगण दृष्टि रख कर लाभ उठावेंगे और ग्रन्थकर्ता के महान् परिश्रम को सफल करेंगे। इस ग्रन्थ में कई स्थलों में टिप्पणियों की आवश्यकता थी इसलिए मैंने जहाँ-जहाँ उचित समझा वहां-वहां लिख दी हैं। यह ग्रन्थ प्रथमावृति में छपा था उस को बिके बहुत दिन हो गये इस कारण से शतशः लोगों की शीघ्रता छपने के विषय में आई, इस कारण से यह द्वितीयावृति अत्यन्त शीघ्रता में हुई है। छापते समय ग्रन्थ के शोधने और विरामादि चिन्हों के देने में जहां तक बना बहुत ध्यान दिया परन्तु शीघ्रता के कारण से कहीं भूल रह गई हो तो पाठकगण ठीक कर लें। चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मंजिल, सिपारा, सूरत और आयत का ब्यौरा लिखा है उस में और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें।’

ऋषि दयानन्द के विश्वासपात्र मुन्शी समर्थदान जी विषयक जानकारी प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता है। सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध रूप में प्रकाशित होने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह सत्यार्थप्रकाश वैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें समस्त वैदिक साहित्य का निचोड़ है। यह भूतो न भविष्यति के समान है। आर्यों का तो यह धर्मग्रन्थ है ही। इस ग्रन्थ ने विश्व में सभी मत-सम्प्रदायों को अपनी मान्यताओं व सिद्धान्तों पर पुनर्विचार कर उसमें संशोधन के लिए आन्दोलित किया। अनेक मतों ने सत्यार्थप्रकाश के आलोक में अपनी मान्यताओं की व्याख्याओं को संशोधित भी किया है जिसका वर्णन प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी अपने लेखकीय कार्यों में करते रहते हैं। इसका श्रेय जहां महर्षि दयानन्द जी को हैं, वहीं इसके प्रकाशन में सहयोग करने के लिए मुन्शी समर्थदान भी अभिन्नदन के पात्र हैं। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। हमें मुन्शी समर्थदान जी का चित्र प्राप्त नहीं हो सका। यदि किसी आर्य विद्वान वा पाठक को मुन्शी समर्थदान जी के चित्र की किसी पुस्तक आदि में प्रकाशित होने की जानकारी हो तो कृपया हमें अवगत कराने की कृपा करें। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून.**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘ऋषि दयानन्द द्वारा आरम्भ व जारी कल्याणकारी कार्यों पर विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 ऋषि दयानन्द ने मथुरा में अपने विद्या गुरु स्वामी विरजानन्द जी के यहां सन् 1860 से सन् 1863 तक लगभग तीन वर्ष अध्ययन कर दीक्षा प्राप्त की और संसार से अज्ञान व अविद्या हटाने के संकल्प के साथ कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। इसके बाद उन्होंने आगरा में प्रचार किया। सन्ध्या व भागवत खण्डन जैसी पुस्तकंे लिखी। वेदों की प्राप्ति के लिए ग्वालियर, कैरोली व जयपुर आदि गये। देश के अनेक भागों में घूमे और वहां उपदेश आदि के द्वारा प्रचार किया। 16 नवम्बर, सन् 1969 को काशी में मूर्तिपूजा पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया। उस शास्त्रार्थ में विजयी हुए। उनकी कीर्ति देश देशान्तर में फैल गई। उनका कार्य जारी रहा। वह भ्रमण और प्रचार करते रहे। सन् 1875 में उन्होंने मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। इसके अनन्तर उन्होंने आर्याभिविनय, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदभाष्य आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया और देश भर में घूम घूम कर वेदों का प्रचार करते रहे। मई 1883 से आरम्भ जोधपुर प्रवास में उन्हें विष दिया गया। जोधपुर में उनकी चिकित्सा भी भली प्रकार नहीं कराई गई जबकि वह वहां के महाराजा के अतिथि थे। इस कारण लगभग 58 वर्ष 8 माह की आयु में 30 अक्तूबर, सन् 1883 को उनका अजमेर में निधन हो गया।

स्वामी जी ने अपने जीवन में मुख्यतः सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार किया। ईश्वर के सत्यस्वरूप को देश व संसार में स्थापित किया। सन्ध्या व दैनिक अग्निहोत्र सहित पांच महायज्ञों को सर्वत्र स्थापित किया। ईश्वर, जीव व प्रकृति तीन अनादि व अविनाशी पदार्थों के अस्तित्व विषयक त्रैतवाद के सिद्धान्त को संसार को दिया। स्वामी दयानन्द जी ने इन कार्यों को करते हुए गोरक्षा आन्दोलन, हिन्दी प्रचार-प्रसार आन्दोलन और शुद्धि आन्दोलन का शुभारम्भ भी किया था। सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सहायता देने के लिए उन्होंने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का प्रणयन कियाा। सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध के चार समुल्लास खण्डनात्मक हैं जिसमें उन्होंने वेदेतर मतों की प्रमुख पुस्तकों के आधार पर उनकी मान्यताओं की समीक्षा प्रस्तुत कर सभी मतों के लोगों को सत्य के ग्रहण व असत्य के छोड़ने में सहायता की। अल्पकाल में मृत्यु हो जाने के कारण वह इन कार्यों को आगे नहीं बढ़ा सके। आज इनकी जो स्थिति है, यह विचारणीय है।

गोरक्षा आन्दोलन की बात करें तो आर्यसमाज ने वैचारिक दृष्टि से समाज में गोरक्षा के महत्व को स्थापित करने का प्रयास किया। वैदिक धर्म के प्रमुख ग्रन्थ व सृष्टि के आद्य ग्रन्थ वेदों पर आरोप लगाये जाते थे कि वेदों में गोहत्या व गोमांस सेवन का विधान है। आर्यसमाज के विद्वानों ने इस पर अनेक ग्रन्थ लिखकर ऐसे आरोपों को निर्मूल किया। आर्यसमाज मौखिक व लिखित प्रचार ही कर सकता था जो कि उसने किया। किसी से किसी बात को आग्रहपूर्वक व जोर देकर नहीं मनवाया जा सकता। कुछ बातें जो उचित हों और किसी कारण कोई न माने तो साम, दाम, दण्ड व भेद की नीति ही अपनानी होती है। दण्ड सरकार के हाथों में है और उसने सत्यासत्य को अपनी इच्छानुसार मानने की छूट दी हुई है। राजपक्ष को धर्म में भी सत्य का साथ देना चाहिये। आज देश में ऐसी स्थिति नहीं थी। यदि शंकराचार्य जी के समय में भी ऐसा ही होता तो शायद वह वैदिक धर्म की पुर्नस्थापना कर पाते? सन् 1947 में देश के विभाजन व आजादी के बाद जो सरकार बनी, उसमें मांसाहारी राजनेताओं की बहुलता कह सकते हैं जो विदेशों में पढ़े थे, वहां मांस खाया जाता था, भारत सहित विदेश में रहकर भी उनके मांसाहार के संस्कार थे। आजादी से पूर्व लगभग 13 शताब्दियों तक विदेशी शासकों ने मांसाहार का खूब प्रचार किया जिससे देश की मूल निवासियों के संस्कार भी बिगड़ गये थे। वेद, वैदिक परम्पराओं, सिद्धान्तों, कर्म-फल सिद्धान्त व मांसाहार के दोषों से हमारे आजादी के बाद के शासकगण अपरिचित थे। उन्होंने मांसाहार के विरुद्ध कोई कानून नहीं बनाया जिसका परिणाम यह है कि आज पहले से भी अधिक गोहत्या सहित अनेक प्रकार के पशुओं की मांसाहार व उनके मांस के निर्यात के लिए प्रतिदिन हत्यायें होती हैं। आज देश में यदि वेदों के विद्वान राजा व शासक होते, तो यह स्थिति न होती। आज प्रतिदिन हजारों व लाखों गो आदि पशुओं की हत्या प्रतिदिन होती है। आर्यसमाजी मांसाहार नहीं करते। हिन्दू भी गोमांस नहीं खाते। विदेशी शिक्षा व संस्कारों के प्रभाव से यहां के कुछ लोग गोमांस खाने भी लगे हैं। ईसाई व मुस्लिम मत के अधिकांश लोगों को गोमांस के सेवन में कोई आपत्ति नही है अपितु गोहत्या का विरोध मुख्यतः इन्हीं सम्प्रदायों द्वारा होता है। अतः अमानवीय व कू्ररता का कार्य होने पर भी गोहत्या आज भी जारी है। नहीं कह सकते कि यह कभी बन्द होगी या नहीं? ऋषि दयानन्द ने इसके पूरे देश में हस्ताक्षर अभियान चलाया था। वह करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर कराकर उन्हें महारानी विक्टोरिया को गोहत्या बन्द कीरने की प्रार्थना के साथ भेजने वाले थे। कार्य तेजी से चल रहा था कि अचानक उनकी मृत्यु हो गयी। ऋषि दयानन्द का यह कार्य आज भी अधूरा है। महर्षि दयानन्द ने गोहत्या का महत्व गोकरूणानिधि पुस्तक लिख कर भी प्रतिपादित किया है परन्तु यह देश और गोमाता का दुर्भाग्य ही है कि वह बन्द नहीं की जा रही है और अब आर्यसमाज भी खामोश हो गया है। ऋषि दयानन्द अपने समय में इस समस्या को लेकर काफी भावुक थे। यदि वह और जीवित रहते तो इसे अवश्य अंजाम तक पहुंचाने का हर सम्भव प्रयास करते और इसे करा ही लेते। इसके लिए जो अपेक्षित होता वह सब कुछ करते।

स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी। वह संस्कृत के देश के शीर्ष विद्वान थे, धारा प्रवाह सरल व सुबोध संस्कृत बोलते थे। हिन्दी का महत्व जान लेने पर उन्होंने संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को सर्वत्र प्रतिष्ठित किया। उनके समय में उत्तर भारत में उर्दू का प्रचलन था। सरकार ने भाषा के प्रयोग से संबंधित एक आयोग, हण्टर कमीशन की स्थापना की थी। स्वामीजी ने हिन्दी को राज कार्यों की भाषा बनाने के लिए देश भर में एक प्रभावशाली हस्ताक्षर अभियान चलाया। उन्होंने उर्दू जानने वाले अपने अनुयायियों को सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद करने की अनुमति देने से भी स्पष्ट इंकार कर दिया था और कहा था कि जिनको उनके विचारों को जानने की इच्छा होगी वह हिन्दी सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। उन्होंने आवेश में यह भी कहा था कि जो मनुष्य इस देश में उत्पन्न होकर यहां का अन्न खाता, जल पिता और यहां की वायु में श्ंवास लेता है, वह यदि यहां की सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली आर्य भाषा हिन्दी को सीखने का प्रयत्न नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उनका कहना था कि दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं कि जब अटक से कटक तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार हो। हिन्दी के प्रति दृढ़ विचारों और उनके अनुयायियों के तदवत् आचरण के कारण देश में हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ने के साथ उसका चहुं ओर प्रचार प्रसार हुआ। आज हिन्दी जिस गरिमापूर्ण स्थिति में है उसका सर्वाधिक श्रेय स्वामी दयानन्द जी और आर्यसमाज को है। हिन्दी के मार्ग में भी सबसे बड़ी बाधा विदेशों में पढ़े व पले राजनेता, उनके परिवार व धनाड्य लोग हैं। यह सभी लोग अंग्रेजी स्कूलों में पढ़कर व अपने बच्चों को पढ़ाकर समाज में उच्च स्थिति की प्राप्ति के लिए अंग्रेजी के वर्चस्व को बनाये हुए हैं। हिन्दी को राजनीति का शिकार भी होना पड़ा। भारत में भाषा के प्रति जापान व इजरायल जैसी भावनात्मक स्थिति नहीं है। यदि होती तो आज हिन्दी सर्वत्र प्रतिष्ठित होती। प्रजातन्त्र में राजनीतिक वर्चस्व के लिए वोटों का महत्व है। इस देश में लोगों को हिन्दी का डर दिखाकर वोट बटोरने में कुछ राजनीतक दलों को लाभ मिलता है। यही कारण रहा की हिन्दी को जिस स्थान पर होना चाहिये था, आज वह वहां तक नहीं पहुंच सकी। लेकिन गोहत्या आन्दोलन की तुलना में हिन्दी की स्थिति अच्छी कह सकते हैं। आज टीवी व पब्लिक स्कूल आदि हिन्दी के प्रसार में बाधायें उत्पन्न कर रहे हैं। माता-पिता अपने बच्चों को डाक्टर, इंजीनियर, सरकारी अधिकारी, सफल व्यवसायी व राजनेता आदि बनाना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें हिन्दी से अधिक अंग्रेजी आवश्यक लगती है। जब कभी भारत का आत्म गौरव जागेगा तो अनुमान कर सकते हैं कि हिन्दी और अधिक प्रचलित होगी वा वृद्धि को प्राप्त होगी। भविष्य में क्या होगा, यह पुरुषार्थ और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। ईश्वर से ही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह सबको सद्बुद्धि दें जिससे सारा देश एक भाषा में बोल सके, सभी परस्पर के व्यवहारों को हिन्दी में कर राष्ट्रीय एकता सम्पादित कर सके।

ऋषि दयानन्द द्वारा वैदिक धर्म के अन्र्तगत इतिहास में प्रथम वार शुद्धि आन्दोलन का सूत्रपात किया था। पहली शुद्धि उन्होंने देहरादून में मोहम्मद उमर नामक एक मुस्लिम व्यक्ति की की थी जो वैदिक धर्म की विशेषताओं से प्रभावित होकर स्वेच्छा से सपरिवार आर्य बने थे। इसके बाद यत्र तत्र शुद्धि का कार्य होता रहा। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मथुरा व आगरा के मलकान राजपूतों, जो कभी जोर जबरस्ती से मुसलमान बना लिये गये थे, उनकी प्रार्थना पर व उनके वैदिक धर्म के प्रचार से प्रभावित होने के कारण उन्हें पुनः वैदिक धर्म में प्रविष्ट किया था। आर्य हिन्दुओं में तब भी और अधिकांशतः अब भी जन्मना जाति व्यवस्था होने के कारण यह पूर्णतः सफल नहीं हुई क्योंकि शुद्ध हुए बन्धुओं के पुत्रों व पुत्रियों को आर्य व हिन्दू परिवारों के लोग विवाह कर अपनाने को तैयार नहीं थे। इसलिए यह कार्य जितना अधिक हो सकता वह न हो सका। तथापि यत्र तत्र कुछ कुछ होता रहा व होता रहता है। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें से चौदहवे समुल्लास तक के चार समुल्लास इसी लिए लिखे थे कि विभिन्न मत-मतान्तरों के लोग इन्हें पढ़कर वैदिक धर्म को जानें और सर्वाधिक सत्य, ज्ञान, विज्ञान से युक्त श्रेष्ठ वैदिक धर्म की शरण लें। जो कार्य हुआ वह बहुत कम है। जब तक हिन्दू व आर्यों में जन्मना जातिवाद रहेगा तब तक शुद्धि के कार्य में गति नहीं आ सकती। आज की स्थितियां पहले से अधिक जटिल हैं। यदि शुद्धि का कार्य बन्द रहा और देश में दूसरे लोग जिस प्रकार से छद्म रूप से अपनी जनसंख्या वृद्धि कर रहे हैं, उससे भविष्य में जनसंख्या असन्तुलन से हिन्दुओं को इतिहास के सबसे बुरे दिन देखने पड़ सकते हैं। इसके लिए पाकिस्तान व बंगलादेश का उदाहरण देख सकते हैं। दुःख इस बात का है कि हमारे धार्मिक नेता स्वार्थ के मार्ग पर चल रहे हैं और इन मुद्दों पर उनकी आंखे बन्द हैं। हिन्दुओं के सभी समुदायों को परस्पर मिल कर इस समस्या पर विचार करना चाहिये और भविष्य का विचार कर उपाय करने चाहियें। ऋषि द्वारा आरम्भ यह शुद्धि आन्दोलन भी प्रभाव की दृष्टि से कमजोर ही दृष्टिगोचर होता है।

आज आवश्यकता है कि हम आर्यसमाज और हिन्दू समाज से जन्मना जातिवाद को दूर करने का प्रयास करें। परस्पर संगठित हों व सत्यार्थप्रकाश का महत्व प्रतिपादित करें। दूसरों को अपनों में मिलाने के लिए अपने हृदय के द्वार खोल दें। संगठित होंगे तो हम विरोधियों के हमलों को झेल सकते हैं। परस्पर एकता न होने पर हमारा अस्तित्व समाप्त हो सकता है। अंग्रेजों के समय में भी भारतीय राजा एक दूसरे के विरुद्ध थे। अंगे्रजों ने फूट डाली और आपस में लड़ाकर स्वयं स्वामी व राजा बन गये थे। इसकी पुनरावृत्ति रोकने के उपाय किये जाने चाहियें। इस विषय में अधिक न कहते हुए हमें ऋषि दयानन्द द्वारा आरम्भ सभी कार्यों को प्रभावशाली रूप से जारी रखना चाहिये। यही हमारा कर्तव्य व धर्म है। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**